गीति काव्य परंपरा में मोहन अवस्थी का अनुगीत दर्शन

डॉ० प्रमोद कुमार मिश्र

डॉ0 मोहन अवस्थी का काव्य विश्वास विश्वबन्धुत्व एवं मानवतावादी मूल्यों से परिपूर्ण है। यही कारण है कि छायावाद के प्रति उनका लगाव उनके जीवन के अंतिम क्षणों तक बना रहा तथा निराला और भक्तिकालीन कवियों में तुलसी उनके सबसे प्रिय कवि रहे। इसी वजह से उन्होंने 'निराला और तुलसीदास' शीर्षक से एक समीक्षात्मक ग्रंथ भी लिखा। छायावाद से प्रभावित अनुगीतों में एक उदाहरण दृष्टव्य है –

मैं तुम्हारे हाथ की खींची हुई तस्वीर हूं[1]

इस कविता में छायावादी 'रहस्यवाद' की स्पष्ट धमक है। कवि का पूर्ववर्ती काव्य शिल्प के प्रति लगाव ठहराव का द्योतक नहीं है उसमें नये पथ पर बढ़ने का जोश है और नये राग में कविता रचने की अभिलाषा है।[2] अवस्थी जी उस कथा को कविता का कथ्य बनाना चाहते हैं जो नयी दृष्टि का उन्मेष करे। मानव जीवन की महत्वाकांक्षा एवं पीड़ा आगे जाकर आसमान छूने की ललक, खरा, कडुवा अनुभव तथा भावनाओ का आवेग गीत को मर्मस्पर्षी बना देता है।

जीवन की पीर जो थी जिस पीर में जीवन था,
अब कौन है कि आकर वह पीर फिर उभारे।
निस्तेज धड़कनों के स्वर लड़खड़ा रहे हैं,
कब तक भला जियोगे अखबार के सहारे।[3]
अभी तक गोद में कवि को व्यथा लिये बैठी,
अभी न कीजिए मेहनत उसे मिटाने की।
न सिर्फ खेद प्रकट करके कामचल सकता,
जमीन चाहिए कुछ तो नजर बचाने की।।[4]

अभिशप्त महारथी सूत पुत्र कर्ण की तरह कवि का उद्दीप्त मन जहाँ भी जाता है उसे कभी भी चैन नहीं मिलता वह व्यग्र होकर शांति की तलाष में जंगलों, पहाड़ों, नदियों, तालाबों, कलियों, फूलों, बाग–बगीचों आदि हर जबह अशान्त मन को शान्त करने का उपाय ढूंढता है किन्तु मन की शान्ति कभी ढूंढने से किसी को मिली है सो वह कवि को भी नहीं मिलती कवि इसका मूल कारण धनाभाव एवं चिंता दोनो को मानता है।

कलियां चटक रहीं क्या डाका सा पड़ रहा है
इस चीखती हवा में यह गंध दुधारा है।
उस रक्त ने फूलों का रंग और निखारा है।
कुछ मार वित्त की है कुछ मार चित्त की है
पर रिक्त चक्षुओं का निर्धात करारा है
मेरा हरेक अक्षर पीड़ा की कुंडली है।
हर शब्द व्यग्र धड़कन, हर अर्थ इशारा है।[5]

कवि जीत की चाहत में अपना सब कुछ हारता रहा एक जुआरी की तरह अपने हरेक मोहरे को शतरंज की विसात पर कुर्बान करता रहा कि शायद बाजी पलटे और वह जीत ही जाये। एक हारे हुये जुआरी की तरह 'हाथ कुछ लगा नहीं' इस विपरीत स्थिति में वह महात्मा बुद्ध के 'करुणावाद' की तरफ अनचाहे ही बढ़ जाता है।

लोभ ने कोंचा कभी, ईर्श्या ने सनकारा कभी
तीर सा तलवार के ऊपर भी सन्नाता रहा।
सब कहीं आघात फिर भी शान से पूरी कटी
जीत की उम्मीद में हर गोट पिटवाता रहा,[6]

अनुगीत खामोश ज्यादा रहता है तथा खामोशी में भी बहुत बात कह जाता है वह भगवान शिव के गरलपन के समान चुपचाप उष्णता को स्वयं ही सहता जाता है और उसकी अनुभूति तो वही कर सकता है जो स्वयं अनुगीत बन जाए। वह कोई बाजारू चीज नहीं कि जिसे जहां चाहा वहीं प्राप्त लिया जाय।[7]

जो बात तीर बनके उतर जाय चित्त में,
वह बात लिखी जाय समाचार में नहीं[8]
अनुगीत मेरे दर्पण बन जायेगे तुम्हारे,
जो मुझपे गुजरती है अपने पे गुजरने दो[9]
अनुगीत आलोचक को दिखायी न पड़ेगा
हर वस्तु प्राप्त होती है बाजार में नहीं[10]
दुर्गर्त भीम पर्वत लपटे उदधि गहन वन,
सिमटे हुये बैठे हैं अनुगीत की गली है।[11]

अनुगीत सिर्फ जलता हुआ शोला ही नहीं है अथवा मात्र दुःख का अंगारा ही नहीं है वरन् अनुभव का शान्तिमय प्रयोग भी है जो कभी–कभी प्रणय रूपों में भी दिखलायी पड़ता है किन्तु वहां भी वह स्वयं को अभिषात या विप्रलम्भ रूप में ही देख पाता है।[12]

सुकुमार जिगीशा में कल्पनाएं ढ़ल गयी
राही के पांव छूने को राहें मचल गयीं

चाहों की हेम चिनगियां आहों मे फल गयी,
आहें रूकी तो अर्थ है चाहें निकल गयी।[13]
जब रंग उड़ा राग ले मन हो गया ठंडा
मिसरी को बदल भाग्य ने कर्पूर कर दिया।[14]

डॉ0 अवस्थी की रचनाएं प्रथमतः स्रोता एवं पाठक और अन्ततः सभी के हृदय का गान बन जाती हैं। नवीन विचारधाराओं के समावेश एवं समन्वय तथा एकदम नयी विधा के कारण कहीं–कहीं अर्थ दुर्बोध भी अनुगीतों में हैं जो कि सामान्यतः सरलीकृत नहीं हो पाती और कविता का दार्शनिक पक्ष भी कहीं–कहीं दुर्बोध हो जाता है। किन्तु फिर भी कविता हृदय पटल पर एक अमिट प्रभाव छोड़ जाती है। कवि जीवन की गहराइयों में डूबना चाहता है किन्तु इसमें भी उसकी शर्त है –

''प्रेम नवनीत–रूशित अगर जिन्दगी, जन्तुओं का विषय व्यूह नाकाम है। खूब गहराइयों में डुबाओ मुझे, शर्त यह है, वहां सिंधु खारा न हो'' सत्य, आकार कुछ भी लहर का नहीं, मानता हूँ डुबाती उठाती न क्या, नीर उल्लास की वे तरंगें नहीं हों भंवर सिर्फ जिनमें किनारा न हो, देह मति प्राण मन चेतना प्रेरणा तत्क्रिया भावनामुक्त कौषल कला, रूप इनका समन्वित बना आदमी, याद रखो कि वह पार–पारा न हो।[15]

अनुगीत संस्कारों तथा अनुभवों दोनों का मिला–जुला रूप है। अनुगीत में संस्कारों से तात्पर्य भाव विधान एवं भावाकृतियों के द्वारा ही संस्कारों का पूर्ण प्रतिफलन किया जाता है।[16] अंधेरे में भी रोशनी की किरण की प्रतीक्षा एवं नियति के कठोर पंजो में जकड़े होने के बावजूद संघर्ष करना ही मनुष्य का उद्देश्य है। अतः यदि यह कहा जाय कि अनुगीत अनुभूति से उठकर लोकानुभूति की तरफ अग्रसर है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

अंधेरे पर अंधेरे जम चुके इतने कि धोखे से,
कहीं एक पर्त जाये टूट, जीवन जगमगा जाये।
सभी उत्सुक प्रतीक्षा में नियति की भी प्रतीक्षा है,
कृपा की दृष्टि किस पर हो, किसे पहले ठगा जाये[17]
संघर्श दृश्य या अदृष्य भाग सभी का
संघर्ष देखना क्या मेरा चाव देखते
कसकर गिरा पै सध गया, है सब चकित खड़े
अज्ञात अमृत–हाथ का प्रभाव देखते[18]

पीड़ा और दुःख के झंझावातों को अनुगीतकार ने अनेक रूपों मे कल्पित किया है। भूसी, कर्पूर, चन्दन और चिता का धूम्र दृश्य रूप में एक समान प्रतीत होता है किन्तु उनके गुण एवं ध्राणेन्द्रिण अलग–अलग होती है। कवि जैसे–जैसे पीड़ा के इस महासागर में धीरे–धीरे अन्दर जाता है उसका अनुभव भी भिन्न–भिन्न प्रतीत होता है। छायावादोत्तर एवं स्वातंत्र्योत्तर कवि इस पीड़ा से टूटते रहे हैं। किन्तु यहां पर पीड़ा में भी सौन्दर्य है और उसको आत्मसात करने की प्रवृत्ति है।

व्यक्ति–व्यक्ति प्रति, भिन्न–भिन्न रंग दुःख के हैं
एक ही रंग को न पकड़ के विसूरिये
कपूर, भूसी, अगरू, लाश का धुआं
एक–सा धुआं नहीं है
प्रणाम सौन्दर्य तुझे हमारे
कि तू सदा है, हुआ नहीं है
रचा बसा तो हरेक में, पर
कभी किसी ने छुआ नहीं हैं।[19]

अनुगीतों को नये–से–नये छन्द में पिरोने की कला में डॉ0 मोहन अवस्थी सिद्धहस्त हैं। उनके छन्दों में शिल्प, भाषा और सौन्दर्य का मणिकांचन संयोग मिलता है। नवीनता की दृष्टि से निम्नलिखित छन्द दृष्टव्य है :–

नाच रही धूलि चक्रवात से लिपटकर
बस नाद–क्रम की कहानी–कहानी
हर एक कण में है सम्पुटित हलचल
वायु को उमेठती है जवानी–जवानी
पत्थरों से कुटता है सिर, दाह वक्ष में है
कांटे विंधे पैर, हाथ कोल्हू के हवाले
अंग–अंग के हैं भिन्न–भिन्न दुःख नये–नये
हाथ पीड़ा वहीं है पुरानी–पुरानी[20]

आजीवन संघर्षों में पले बढ़े एवं उससे लड़कर भी कवि अपनी काव्यगत, शिल्पगत, एवं कथ्य की दृष्टि से अपनी काव्यात्मक ऊँचाइयों का परित्याग नहीं करता वह औदात्य रूप में ही गीत को प्रस्तुत करने का कोई न कोई ढंग निकाल ही लेता है। अनुगीतों में सामान्यतः अभिधात्मक कथ्य नहीं है। यहां पर विनाश में भी निर्माण की व्यंजना है। कला का श्रेष्ठ रूप, भाव गांभीर्यता, भावात्मक उच्चता भी अनुगीतो में विद्यमान है।

बोल फूटा तो ये फूटा बहुत आयास के साथ
कुछ तो निर्माण हुआ होगा मेरे नाश के साथ
भाव दर भाव है मुझमें, मैं हूं अंतर–अंतर
भूमि पर पैर, मगर चलता हूँ, आकाश के साथ[21]

डॉ0 मोहन अवस्थी के अनुगीतों पर गालिब की ये पंक्तियां बिल्कुल फिट बैठती हैं – 'अगर अपना कहा तुम आप ही समझे तो क्या समझे मजा कहने का जब है इस कहे और दूसरा समझे।' यह सच है कि वे क्वांटिटी नहीं क्वालिटी के कवि हैं। अनास्था नहीं आस्था के कवि हैं।[22] कवि के भले ही है किन्तु वह सादगी की जमीन पर, तामझाम एवं बनावटी पन से बहुत दूर है।

तब लड़ाई ताज की थी,
अब लड़ाई ताज की।
हां अकेले तब भी थे हम
है अकेले आज भी।[23]

अवस्थी जी के गीतों को समझने के लिये न तो किसी आलोचक के मोटे लेंस के चश्मे की जरूरत होती है और न ही कवि होने के लिये उन्हें किसी आलोचक के सर्टिफिकेट की।[24] अन्तः सत्य एवं वाह्य सत्य दोनों ही स्थितियों का अनुगीत में उचित ढंग से समावेश किया गया है। अनुगीत की व्याख्या करने के लिये कवि को किसी प्रसिद्ध मठाधीश समीक्षक की आवश्यकता नहीं हैं है और न ही प्राध्यापकीय आलोचना में सिद्ध हस्त किसी प्राध्यापक की, क्योंकि अनुगीत की व्याख्या कोई काव्य साधक या 'अधाध्य वीणा' को बजाने वाला कोई 'केश कंबलि' ही कर सकता है। इस सम्बन्ध में अनुगीत प्रर्वतक कवि का भी कहना है।

करे अनुगीत की व्याख्या कहां वह लाल माई का,
कि कवि निर्माण में ही हो गया बर्बाद क्या जाने।[25]

अनुभव और अनुभूति का परिवेश समन्धित होकर अभिव्यक्त होना ही अनुगीत है। इसलिये जो पाठक इस धरातल पर नहीं है उसे अनुगीत समझने में कठिनाई होती है।[26] प्रत्येक कवि की शैली उसकी अपनी होती है। उसके लिये कवि तो सजग रहता ही है पाठक को भी सजग रहना चाहिये। दुःख और पीड़ा के धनीभूत अंधकार में भी कवि अपने सामाजिक दायित्व को नहीं भूलता क्या–क्या सामाजिक परिवर्तन होने चाहिए कवि ने सोच कर रखा है।

''बदलूं किसे–किसे मैं सोचा न विचारा है।
मेरा हर ऐक अक्षर पीड़ा की कुंडली है
हर शब्द एक धड़कन हर अर्थ इशारा है।[27]

अनुगीत में सिफ पीड़ा या दुःख ही है ऐसा नहीं है। इन रचनाओं में मानव प्रेम की भी अनुगूँज है। कवि हृदय में प्रेम अनुभूति की कल्पना और भ्रम की छिलकों को छीलकर प्रवेषित होती है जिस प्रकार नारियल का ऊपरी भाग तो कठोर होता है किन्तु अन्दर कोमल खाने योग्य नारियल और उसके भी अंदर पानी ठीक यही प्रकृति अनुगीत की है वाह्य रूप में तो अपनी गांभीर्यता के कारण कठिन जान पड़ती है किन्तु एक बार अर्थग्रहण करने के पश्चात पाठक का मन आनंदित हो जाता है। अनुगीत का कवि तो राग में वैराग्य का खोजी है, क्योंकि वीणा के वाह्य कलेवर पर उसकी दृष्टि नहीं है उसे तो वीणा के स्वरों की मृदु लहरियों से मतलब है।[28] प्रेम में उपस्थित चेतना के कारण कवि जीवन बोध का कहीं विस्मरण नहीं करता। वह प्रत्येक सांस में प्यार का अनुभव करता है। इसलिए कही भी सांसो से विरत नहीं होना चाहता क्योंकि सारा जीवन तो सांसो पर टिका हुआ है –

एक–एक जीवन है मेरी
एक–एक लघुसांस
तुम मत हिसाब मांगो
मेरी इन सांसो का[29]

स्वयं के दोष को कवि किसी दूसरे के मत्थे नहीं मढ़ना चाहता वह अपनी कमियों एवं अपनी भूलों को स्पष्ट स्वीकार करता है :–

था दोष तो अपना
मगर सिर और के मढ़ते रहे
गति की जरूरत थी जहां पर
उस जगह अड़ते रहे
सोचा न, लेकिन कह दिया,
जो कुछ कहा वह कब किया
अपनी नजर में कम हुये
हां भाव तो बढ़ते रहे।
न चलती है,
न करती बात ही
माना कि पत्थर काटकर तुम सूरतें गढ़ते रहे।
थी दृष्टि मंजिल पर
अतः वह तो मिली,
बीती उमर,
पथ में हजारों मोड़ ही पड़ते रहे।[30]

प्रख्यात समालोचक डॉ0 रामस्वरुप चतुर्वेदी के मतानुसार डॉ0 अवस्थी की कुछ चरित्रगत विषेशताएं रही हैं उनमें किसी प्रकार का दिखावा या प्रदर्शन नहीं है यही उनके काव्य विशयों में भी दिखायी पड़ता है।[31] आचार्य विश्णुकांत शास्त्री के मतानुसार भगवतगीता और पुराणों का अध्ययन अनेक बार उनके काव्य में भी प्रतिबिम्बित होता है।[32] नयी कविता आंदोलन के प्रणेता कवि व चित्रकार डॉ0 जगदीश गुप्त के अनुसार डॉ0 अवस्थी जी के लेखन में किसी प्रकार का भेद नहीं है।[33] डॉ0 रामकमल राय के अनुसार काव्य के क्षेत्र में अनवरत साधना करके डॉ0 अवस्थी ने एक विधा अनुगीत को स्थापित किया है।[34]

निष्कर्षतः अनुगीत मानव जीवन मूल्यों की विस्तृत एवं समग्र व्याख्या है। जहां पर वाह्य सत्य एवं अंतःसत्य दो ही परिस्थितियों का समुचित समावेष किया गया है। अनुगीत जीवन को तो अपने अंदर समेटता है ही बल्कि इससे भी आगे बढ़कर युग एवं ब्रह्मांड की स्थितियों को भी अपने आपमें समाहित कर लेता है। मानव जीवन के यथार्थ सर्वेक्षण की परिणति ही अनुगीत है। मानवीय मूल्यों की

पक्ष धरता शिल्प के कड़े अनुशान में रहकर अनुगीत सहजता एवं प्रावहमयता से युक्त है।[35] उनके अनुगीत इस शताब्दी के अंतिम चरण के काव्य निकष तथा आगामी शताब्दी के कवियों के लिए चुनौती है।[36] उनके अनुगीत आधुनिक संवेदना की अभिव्यक्ति के सशक्त माध्यम बन गये हैं। उनमें गजब का आत्मानुशासन है और शब्दों एवं लयों की जागरूक सजग योजना है। उनमें भावयित्री तथा कारयित्री दोनों ही प्रतिभाएं समान रूप सक्रिय है। उन्होंने गलदश्रु भावुकता को बुद्धि विवेक की कसौटी खरा उतार कर अनुगीतों में पिरोया है। कवि अपने पथ से विचलना नहीं चाहता और गलत व्यवहार पर क्षमा भी मांगने से गुरेज नहीं करता –

रखो सहेज कर के हर पल, न फिसल जाये,
सांसो की रगड़ खाकर पूंजी न यह जल जाये
बस एक ध्यान है यह पथ से न पांव बिचले।
ये मित्र क्षमा मेरा व्यवहार जो खल जाये।[37]

डॉ0 अवस्थी के अनुगीतों में पीड़ा और मार्मिकता तो है ही जनचेतना और समाज सुधार की बेचैनी भी है।[38] शब्दों में ब्रह्मांड की परिकल्पना कर उसे जीवन का संक्षिप्त परिचय बना देने की कला अनुगीत की खासियत रही है। गीत और दर्शन जहां एक हो जायें उस बिन्दु से अनुगीत फूटता है।[39] डॉ0 अवस्थी से यह पूछने पर कि इस विधा का उत्तराधिकारी कौन होगा तो वे कहते है कि बहुतों ने प्रयास किया किन्तु उनमें दर्षन की गहराई और काव्य का पाठन उस हद तक नहीं था जिससे अनुगीत बन सके आज बनने वाले अनुगीत तो तुकबंदी हैं जिसमें श्रोताओं को मनोरंजन का बोध तो होता है पर दर्शन का ज्ञान नहीं होता।[40]

डॉ0 मोहन अवस्थी के निधन के पश्चात वर्तमान साहित्य पत्रिका में प्रकाशित अपने संस्मरणात्मक लेख में डॉ0 सुनील विक्रम सिंह ने डॉ0 मोहन अवस्थी के जीवन संकेतों एवं उनके साहित्यिक संघर्ष की तरफ संकेत करते हुये ठीक ही लिखा है 'साहित्य में अपनी उपेक्षा से मोहन अवस्थी अत्यन्त व्यथित थे उनसे कम प्रतिभाशाली लोग जोड़–तोड़ और तिकड़म के बल पर भौतिक सफलता पाते रहे लेकिन अवस्थी जी स्वार्थ समर में हारते रहे। वे वास्तव में वे साहित्य के मौन साधक थे।[41]

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि हिन्दी साहित्य की गीति काव्य परंपरा में अनुगीत एक मील का पत्थर है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ मोहन अवस्थी अग्निगंधा(गीत संग्रह), साहित्य संगम 1964 इलाहाबाद
2. डॉ0 राम किशोर षर्मा, हिन्दी अनुषीलन, भारतीय हिन्दी परिशद, (सं0 डॉ0 कामता कमलेष) अंक, 3, 1997, पृ0सं0 61।
3. डॉ0 मोहन अवस्थी, अग्निगंधा (गीत संग्रह) साहित्य संगम, इलाहाबाद 1982 ई0, पृ0सं0 29, 30।
4. डॉ0 मोहन अवस्थी, हलचल के पंख (अनुगीत संग्रह), संतोष प्रिन्टर्स, इलाहाबाद, 1995, पृ0सं0 3।
5. डॉ0 मोहन अवस्थी, हलचल के पंख, (अनुगीत संग्रह) संतोष प्रिन्टर्स, इलाहाबाद, 1995, पृ0सं0 91।
6. डॉ0 मोहन अवस्थी, हलचल के पंख (अनुगीत संग्रह) संतोष प्रिन्टर्स, इलाहाबाद 1995, पृ0सं0 1।
7. डॉ0 सभापति मिश्र, सम्मेलन पत्रिका (सं0) विभूति मिश्र, भाग 84 संख्या 4 आश्विन–मार्गषीर्श शक 1921 संवत 2056 सन1999 पृ0 सं. 87।
8. डॉ0 मोहन अवस्थी, हलचल के पंख (अनुगीत संग्रह) संतोष प्रिन्टर्स, इलाहाबाद 1995, पृ0सं0 1।
9. डॉ0 मोहन अवस्थी, अग्निगंधा, संगम प्रकाशन, इलाहाबाद, 1982, पृ0सं0 9।
10. डॉ0 मोहन अवस्थी, हलचल के पंख, संतोश प्रिन्टर्स, इलाहाबाद, पृ0सं0 23।
11. वही, पृ0सं0 26।
12. डॉ0 सभापति मिश्र, सम्मेलन पत्रिका, भाग 84, संख्या 4, आश्विन मार्गशीर्ष, षक 1921 संवत 2056, 1999, पृ0सं0 10।
13. डॉ0 मोहन अवस्थी, अग्निगंधा, संगम प्रकाषन, इलााहाबाद, पृ0सं0 10।
14. वहीं, पृ0सं0 11।
15. डॉ0 मोहन अवस्थी, हलचल के पंख, संतोष प्रिन्टर्स, इलाहाबाद, 1995, पृ0सं0 115।
16. डॉ0 सभापति मिश्र, सम्मेलन पत्रिका, भाग 84, संख्या 4, आश्विन मार्गशीर्ष, शक 1921 संवत 2056, 1999, पृ0सं0 44।
17. डॉ0 मोहन अवस्थी, हलचल के पंख, संतोष प्रिन्टर्स, इलाहाबाद, 1995, पृ0सं0 21।
18. वहीं, पृ0सं0 14।
19. कादम्बिनी, अगस्त 1997, नई दिल्ली, पृ0सं0 157।
20. कादम्बिनी, जनवरी 1997, नई दिल्ली, पृ0सं0 167।
21. डॉ0 मोहन अवस्थी, हलचल के पंख, संतोष प्रिन्टर्स, इलाहाबाद, 1995, पृ0सं0 26।
22. डॉ0 मुश्ताक अली, स्वतंत्र भारत, लखनऊ, (उपहार, साहित्य वीथी), 18 जून, 1993 ई.
23. डॉ0 मोहन अवस्थी, हलचल के पंख, संतोष प्रिन्टर्स, इलाहाबाद, 1995, पृ0सं0 42।
24. डॉ0 मुश्ताक अली, स्वतंत्र भारत, लखनऊ, (उपहार, साहित्य वीथी), 18 जून, 1993 ई.
25. डॉ0 मोहन अवस्थी, हलचल के पंख, संतोष प्रिन्टर्स, इलाहाबाद, 1995, पृ0सं0 26।
26. डॉ0 मोहन अवस्थी से कैलाशनाथ सिंह की बातचीत, स्वतंत्र भारत, वाराणसी, 11 अगस्त 1992, पृ0सं0 38।
27. कादम्बिनी (सं0 राजेन्द्र अवस्थी), नई दिल्ली, मई 1985, पृ0सं0 38।
28. रमाकान्त शर्मा, राष्ट्रभाषा संदेश, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद, 31 मई 1992, पृ0सं0 8
29. डॉ0 मोहन अवस्थी, अग्निगंधा, संगम प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ0सं0 35।
30. पंचमेश्वर, दिसम्बर 1993, पृ0सं0 53।
31. गंगा–जमुना, वर्ष–2, अंक–4, इलाहाबाद, 19 अगस्त, 1995, पृ0सं0 8।
32. वही, पृ0सं0 8।
33. वही, पृ0सं0 8।
34. वही, पृ0सं0 8।
35. डॉ0 सभापति मिश्र, सम्मेलन पत्रिका, भाग 84, संख्या 4, आश्विन मार्गशीर्ष, शक 1921 संवत 2056, 1999, पृ0सं0 95।
36. वही, पृ0सं0 95।
37. कादम्बिनी (सं0 राजेन्द्र अवस्थी), नवम्बर 1987, नई दिल्ली, पृ0सं0 109।

38. डॉ0 अखिलेश शंखधर, सृजन को समर्पित एक व्यक्तित्व : डॉ0 मोहन अवस्थी, अमर उजाला, इलाहाबाद, 15 फरवरी,2001, पृ0सं0 10।
39. दैनिक जागरण, 13 सितम्बर, 2010 इलााहाबाद, पृ0सं0 5
40. वही, पृ0सं0 5
41. सुनील विक्रम सिंह : साहित्य के मौन साधक, डॉ0 मोहन अवस्थी, वर्तमान साहित्य, सितम्बर 2012, पृ0सं0 9।

प्रवक्ता– हिन्दी विभाग
एम.ए.एस. पी.जी. कालेज, कुण्डा, प्रतापगढ
सम्बद्ध– इलाहाबाद राज्य विश्वविद्यालय इलाहाबाद

.....